International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

कामकाजी महिलाओं की अवधारणा और दोहरी भूमिका: अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में जाति एवं लैंगिकता का सैद्धांतिक विश्लेषण

पवन कुमार बलाई[1], डॉ. अरविंद कुमार वर्मा[2]

[1]शोधार्थी समाजशास्त्र विभाग पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर
[2]सह आचार्य, समाजशास्त्र विभाग श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय सीकर, राजस्थान

सारांश

भारतीय समाज में महिलाओं की आर्थिक भूमिका में आए परिवर्तन ने श्कामकाजी महिलाश् की पारंपरिक अवधारणा को व्यापक बनाया है। आज महिलाओं की भागीदारी केवल औपचारिक रोजगार तक सीमित नहीं हैए बल्कि कृषिए मजदूरीए स्वरोजगार और अनौपचारिक क्षेत्र सहित विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों में दिखाई देती है। इसके बावजूद आर्थिक रूप से सक्रिय होने के साथ घरेलू और देखभाल संबंधी जिम्मेदारियाँ भी मुख्यतः महिलाओं के हिस्से में बनी रहती हैं। इस प्रकार उनका श्रम उत्पादक और पुनरुत्पादक दोनों क्षेत्रों में विभाजित रहता हैए जो उनकी दोहरी भूमिका और दोहरे श्रम.भार को जन्म देता है। अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में यह प्रश्न और अधिक जटिल हो जाता हैए क्योंकि उनके श्रम.अनुभव को केवल लैंगिक असमानता या पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आधार पर नहीं समझा जा सकता। जातिए लैंगिकता और वर्ग की संरचनाएँ उनके रोजगारए श्रम की प्रकृतिए सामाजिक मान्यता तथा पारिवारिक दायित्वों को परस्पर प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत शोध.पत्र कामकाजी महिलाओं की अवधारणा और दोहरी भूमिका का सैद्धांतिक विश्लेषण करते हुए नारीवादीए अंतर्संबंधित तथा दलित नारीवादी दृष्टिकोणों को आधार बनाता है। यह तर्क प्रस्तुत करता है कि अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका को समझने के लिए जाति और लैंगिकता के अंतर्संबंध को विश्लेषण के केंद्र में रखना आवश्यक है।

प्रमुख शब्दः कामकाजी महिलाए दोहरी भूमिकाए अनुसूचित जातिए जातिए लैंगिकताए पितृसत्ताए अंतर्संबंधिता

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक भूमिकाएँ लंबे समय से परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। शिक्षा के विस्तार, रोजगार के नए अवसरों और आर्थिक आवश्यकताओं ने महिलाओं की सार्वजनिक तथा आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी को बढ़ाया है। हालांकि, महिलाओं का आर्थिक कार्यों से जुड़ना कोई पूरी तरह नई घटना नहीं है। कृषि, घरेलू उत्पादन, पारिवारिक व्यवसाय, मजदूरी और विभिन्न अनौपचारिक कार्यों में महिलाएँ ऐतिहासिक रूप से सक्रिय रही हैं। परिवर्तन इस बात में अधिक दिखाई देता है कि महिलाओं के आर्थिक श्रम को किस प्रकार परिभाषित, दर्ज और सामाजिक रूप से मान्यता दी जाती है। इस संदर्भ में 'कामकाजी महिला' की अवधारणा को केवल औपचारिक रोजगार या वेतन प्राप्त करने वाली महिला तक सीमित करना पर्याप्त नहीं है। महिलाओं का घरेलू और देखभाल संबंधी श्रम भी परिवार और अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इसका बड़ा हिस्सा असशुल्क और अदृश्य बना रहता है।

महिलाओं के सशुल्क रोजगार में प्रवेश के बावजूद घरेलू श्रम और पारिवारिक दायित्वों का उनके हिस्से में बने रहना उनकी दोहरी भूमिका को जन्म देता है। एक ओर वे आय अर्जित करने, रोजगार संबंधी जिम्मेदारियाँ निभाने और परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं में योगदान देने का कार्य करती हैं, वहीं दूसरी ओर भोजन, बच्चों की देखभाल,

घरेलू प्रबंधन और अन्य देखभाल संबंधी कार्यों की जिम्मेदारी भी प्रायः उन्हीं पर रहती है। इस प्रकार उत्पादक और पुनरुत्पादक श्रम के बीच स्थित असमान विभाजन महिलाओं के समय, श्रम और अवसरों को प्रभावित करता है। भारतीय संदर्भ में महिलाओं के असशुल्क घरेलू श्रम पर किए गए अध्ययनों ने भी इस लैंगिक असमानता और उसके सामाजिक–आर्थिक प्रभावों को रेखांकित किया है।

हालाँकि, सभी कामकाजी महिलाओं के अनुभवों को एक समान मान लेना उचित नहीं होगा। महिलाओं की कार्यस्थिति और सामाजिक अनुभव जाति, वर्ग और लैंगिकता जैसी संरचनाओं से प्रभावित होते हैं। विशेष रूप से अनुसूचित जाति की महिलाओं के मामले में जाति और लैंगिकता एक–दूसरे से जुड़कर उनके श्रम और सामाजिक स्थिति को आकार देते हैं। दलित महिलाओं पर किए गए अध्ययनों ने यह दिखाया है कि उन्हें लैंगिक भेदभाव के साथ–साथ जातिगत बहिष्करण और आर्थिक वंचना का भी सामना करना पड़ता है (सबरवाल एवं सोनलकर 2015)। इसी प्रकार, भारतीय घरेलू श्रम के संदर्भ में रघुराम (2001) ने दिखाया है कि भुगतान वाले घरेलू कार्य का संगठन भी जाति और लैंगिक पदानुक्रम से प्रभावित होता है।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध–पत्र कामकाजी महिलाओं की अवधारणा और उनकी दोहरी भूमिका का सैद्धांतिक विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनुभवों को जाति और लैंगिकता के अंतर्संबंध के बिना किस हद तक समझा जा सकता है। शोध–पत्र का केंद्रीय तर्क है कि अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका को केवल 'महिला' होने के अनुभव के आधार पर देखना अपर्याप्त है। इसके लिए जाति, लैंगिकता और श्रम के परस्पर संबंधों को विश्लेषण के केंद्र में रखना आवश्यक है। इस दृष्टि से अंतर्संबंधिता तथा दलित नारीवादी दृष्टिकोण इस दोहरी भूमिका को समझने के लिए अधिक व्यापक सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं।

2. कामकाजी महिला की अवधारणा: रोजगार से श्रम तक

'कामकाजी महिला' की अवधारणा को सामान्यतः उस महिला के संदर्भ में समझा जाता है जो आय अर्जित करने वाली किसी आर्थिक गतिविधि में संलग्न होती है। हालांकिए महिलाओं के काम को केवल नियमित वेतन वाले रोजगार तक सीमित करना उनकी वास्तविक श्रम–भागीदारी को संकुचित कर देता है। भारत में महिलाएँ औपचारिक क्षेत्र के रोजगार के साथ–साथ कृषि, स्वरोजगार, घरेलू उद्योग, पारिवारिक व्यवसाय, दिहाड़ी मजदूरी तथा अनौपचारिक क्षेत्र की अनेक गतिविधियों में लंबे समय से योगदान देती रही हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी भारत में महिलाओं के श्रम के संदर्भ में यह रेखांकित किया है कि महिलाओं की आर्थिक भागीदारी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा ऐसे कार्यों से जुड़ा है जो औपचारिक आर्थिक आँकड़ों में पर्याप्त रूप से दर्ज नहीं हो पाते (रवींद्रन 2010)।

इस संदर्भ में 'काम' और 'श्रम' के बीच अंतर करना आवश्यक है। सामान्य अर्थ में काम किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कार्य है, जबकि श्रम उस कार्य में लगने वाले समय, ऊर्जा और प्रयास को भी समाहित करता है। महिलाओं के संदर्भ में यह अंतर इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उनका बहुत–सा श्रम रोजगार के औपचारिक ढाँचे के बाहर होता है। उदाहरण के लिए– भोजन तैयार करना, घर की सफाई, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल तथा परिवार की दैनिक आवश्यकताओं का प्रबंधन ऐसी गतिविधियाँ हैं जिनमें पर्याप्त समय और श्रम लगता है, लेकिन इनके बदले प्रत्यक्ष आर्थिक पारिश्रमिक प्राप्त नहीं होता। इसलिए नारीवादी अर्थशास्त्र ने लंबे समय से इस प्रश्न को उठाया है कि आर्थिक विश्लेषण में केवल बाजार के भीतर किए गए कार्यों को ही 'काम' क्यों माना जाए।

इसी आधार पर सशुल्क श्रम (Paid Labour) और असशुल्क श्रम (Unpaid Labour) के बीच अंतर सामने आता है। सशुल्क श्रम बाजार में आय उत्पन्न करता है और सामान्यतः आर्थिक गतिविधि के रूप में दर्ज होता है, जबकि घरेलू और देखभाल संबंधी असशुल्क श्रम प्रायः परिवार के भीतर ही किया जाता है। भारत में महिलाओं पर असशुल्क घरेलू और देखभाल संबंधी कार्य का अनुपात अधिक होने के कारण यह श्रम उनके समय और रोजगार संबंधी अवसरों को भी प्रभावित करता है (भुटा एवं मुरलीधरन 2020)।

इसी क्रम में उत्पादक श्रम (Productive Labour) और पुनरुत्पादक श्रम (Reproductive Labour) की अवधारणाएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं। उत्पादक श्रम से सामान्यतः वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा आय अर्जन से जुड़ी गतिविधियों को समझा जाता है, जबकि पुनरुत्पादक श्रम में परिवार और श्रमशक्ति के दैनिक तथा दीर्घकालिक पुनरुत्पादन से जुड़े कार्य शामिल होते हैं– जैसे भोजन, देखभाल, बच्चों का पालन–पोषण और घरेलू प्रबंधन। नारीवादी अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उसने पुनरुत्पादक और घरेलू श्रम को अर्थव्यवस्था से अलग किसी निजी क्षेत्र की गतिविधि मानने के बजाय उसके आर्थिक महत्व पर ध्यान आकर्षित किया है।

इस प्रकार 'कामकाजी महिला' की अवधारणा समय के साथ 'केवल रोजगार करने वाली महिला' से आगे बढ़कर ऐसी महिला की अवधारणा बनती है जो एक साथ आर्थिक और घरेलू दोनों क्षेत्रों में श्रम करती है। आधुनिक संदर्भ में महिला की सामाजिक भूमिका को केवल गृहस्थी तक सीमित करना संभव नहीं है, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में उसकी भागीदारी ने घरेलू दायित्वों को समाप्त नहीं किया है। यही स्थिति आगे चलकर कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका की अवधारणा को जन्म देती है। अतः कामकाजी महिला को समझने के लिए रोजगार की स्थिति के साथ–साथ उसके द्वारा किए जाने वाले दिखाई देने वाले और अदृश्य, सशुल्क और असशुल्क, उत्पादक और पुनरुत्पादक सभी प्रकार के श्रम को ध्यान में रखना आवश्यक है।

3. सैद्धांतिक आधारः जाति, लैंगिकता और अंतर्संबंधिता

अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका को समझने के लिए केवल उनके रोजगार की स्थिति का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। उनके श्रम और सामाजिक अनुभव उन संरचनाओं से प्रभावित होते हैं जिनमें जाति, लैंगिकता, वर्ग और पितृसत्ता एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इसलिए इस अध्ययन का सैद्धांतिक आधार नारीवादी दृष्टिकोण, जाति और श्रम के समाजशास्त्रीय विश्लेषण तथा अंतर्संबंधिता की अवधारणा पर आधारित है। इन दृष्टिकोणों को साथ रखकर ही यह समझा जा सकता है कि आर्थिक रूप से सक्रिय होने के बावजूद महिलाओं पर घरेलू श्रम और देखभाल संबंधी जिम्मेदारियाँ क्यों बनी रहती हैं और अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए यह अनुभव किस प्रकार विशिष्ट रूप ग्रहण करता है।

3.1 लैंगिक श्रम–विभाजन

समाज में श्रम का विभाजन केवल कार्य की प्रकृति के आधार पर नहीं होता बल्कि लैंगिक मान्यताएँ भी यह निर्धारित करती हैं कि कौन–सा कार्य पुरुषों और कौन–सा कार्य महिलाओं के लिए उपयुक्त माना जाएगा। पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में पुरुषों को सार्वजनिक और आर्थिक क्षेत्र से तथा महिलाओं को घरेलू और पारिवारिक क्षेत्र से जोड़कर देखा गया। इस प्रकार घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल और परिवार के दैनिक प्रबंधन को महिलाओं की स्वाभाविक जिम्मेदारी मान लिया गया। नारीवादी चिंतन ने इसी व्यवस्था को लैंगिक श्रम–विभाजन (Gender Division of Labour) के रूप में आलोचनात्मक ढंग से देखा है। यह विभाजन केवल कार्यों का विभाजन नहीं है, बल्कि उनके सामाजिक मूल्यांकन में भी असमानता पैदा करता है। बाजार में किया गया और पारिश्रमिक प्राप्त करने वाला कार्य सामान्यतः अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है जबकि घर में किया गया असशुल्क श्रम आर्थिक रूप से कम दिखाई देता है। इस प्रकार काम की सामाजिक मान्यता भी लैंगिक आधार पर निर्धारित होती है। महिलाओं के रोजगार में प्रवेश के बाद भी यदि घरेलू श्रम का पुनर्वितरण नहीं होताए तो उनके ऊपर कार्य का कुल भार कम होने के बजाय बढ़ सकता है।

3.2 पितृसत्ता और घरेलू श्रम

लैंगिक श्रम–विभाजन को समझने के लिए पितृसत्ता की अवधारणा महत्वपूर्ण है। पितृसत्ता ऐसी सामाजिक संरचना को संदर्भित करती है जिसमें परिवार, संपत्ति, निर्णय–निर्माण और सामाजिक अधिकारों के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में पुरुषों को अपेक्षाकृत अधिक शक्ति प्राप्त होती है। इस व्यवस्था में महिलाओं की घरेलू भूमिका को केवल सामाजिक अपेक्षा के रूप में नहीं बल्कि एक नैतिक और स्वाभाविक दायित्व के रूप में स्थापित किया जाता है। यही कारण है कि किसी महिला के आर्थिक रूप से सक्रिय होने के बाद भी उसके घरेलू दायित्व स्वतः समाप्त नहीं होते। वह कार्यस्थल पर सशुल्क श्रम करने के बाद घर में भोजन बनानेए सफाई करने, बच्चों की देखभाल और परिवार के अन्य सदस्यों की

आवश्यकताओं को पूरा करने का कार्य करती है। इस प्रकार उसका श्रम दो अलग–अलग क्षेत्रों में बँट जाता है। नारीवादी अर्थशास्त्र ने विशेष रूप से इस असशुल्क घरेलू श्रम को सामने लाने का प्रयास किया है, क्योंकि पारंपरिक आर्थिक दृष्टिकोण में बाजार से बाहर किए जाने वाले ऐसे कार्यों का पर्याप्त मूल्यांकन नहीं किया जाता।

3.3 जाति और श्रम का सामाजिक संगठन

भारतीय संदर्भ में श्रम का विश्लेषण केवल लैंगिक आधार पर करना पर्याप्त नहीं है क्योंकि श्रम का सामाजिक संगठन जाति से भी गहराई से जुड़ा रहा है। जाति व्यवस्था ने ऐतिहासिक रूप से विभिन्न समुदायों के लिए व्यवसायों और सामाजिक भूमिकाओं को निर्धारित किया तथा श्रम को सामाजिक प्रतिष्ठा के अलग–अलग स्तरों में बाँटा। इस व्यवस्था में केवल श्रम का विभाजन नहीं हुआ, बल्कि श्रम करने वालों का भी सामाजिक विभाजन हुआ। जाति और श्रम के इस संबंध का लैंगिक आयाम भी है। महिलाओं के काम की प्रकृति और सामाजिक स्थिति को उनकी जातिगत पहचान प्रभावित कर सकती है। उमा चक्रवर्ती ने जाति और लैंगिकता के संबंध का विश्लेषण करते हुए दिखाया है कि भारतीय जाति व्यवस्था को बनाए रखने में महिलाओं की यौनिकता, विवाह और सामाजिक आचरण पर नियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके अनुसार जाति और पितृसत्ता को अलग–अलग प्रक्रियाओं के रूप में देखना भारतीय सामाजिक संरचना की जटिलता को समझने में बाधा डालता है (चक्रवर्ती 2003)।

इस दृष्टि से अनुसूचित जाति की महिलाओं का श्रम केवल 'महिला श्रम' नहीं है, उसकी सामाजिक स्थिति को जातिगत श्रम–विभाजन और लैंगिक पदानुक्रम के संयुक्त प्रभावों के संदर्भ में देखना आवश्यक है।

3.4 अंतर्संबंधिता

जाति और लैंगिकता को एक साथ समझने के लिए अंतर्संबंधिता (Intersectionality) की अवधारणा विशेष रूप से उपयोगी है। किम्बर्ले क्रेंशॉ ने 1989 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख "Demarginalsing the Intersection of Race and Sex" में यह दिखाया कि भेदभाव को केवल एक ही आधार जैसे नस्ल या लैंगिकता के माध्यम से समझने पर अश्वेत महिलाओं के विशिष्ट अनुभव अदृश्य हो जाते हैं (क्रेंशॉ 1989)।

इस अवधारणा का मूल महत्व यह है कि सामाजिक पहचान और असमानता की विभिन्न संरचनाएँ अलग–अलग और स्वतंत्र रूप से काम नहीं करतीं, बल्कि कई बार एक–दूसरे को प्रभावित करते हुए विशिष्ट अनुभव पैदा करती हैं। भारतीय संदर्भ में नस्ल की जगह जाति को एक महत्वपूर्ण सामाजिक संरचना के रूप में रखते हुए इस दृष्टिकोण को उपयोगी ढंग से अपनाया जा सकता है। अनुसूचित जाति की महिला के अनुभव को केवल 'महिला' होने के आधार पर समझने से जातिगत स्थिति का प्रभाव छूट सकता है, जबकि केवल 'अनुसूचित जाति' की सदस्यता पर ध्यान देने से उसके लैंगिक अनुभव की उपेक्षा हो सकती है। इसलिए अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में जाति, लैंगिकता, वर्ग और श्रम को परस्पर जुड़े आयामों के रूप में देखना आवश्यक है। यही दृष्टिकोण उनकी दोहरी भूमिका को सामान्य working women की स्थिति से अलग करके समझने की संभावना प्रदान करता है।

3.5 दलित नारीवादी दृष्टिकोण

अंतर्संबंधिता की इसी समझ को भारतीय संदर्भ में आगे बढ़ाने में दलित नारीवादी दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मुख्यधारा के नारीवादी विमर्श में लंबे समय तक 'महिला' को एक अपेक्षाकृत एकरूप सामाजिक श्रेणी के रूप में देखा गया, जबकि दलित नारीवादी चिंतन ने इस धारणा पर प्रश्न उठाया कि सभी महिलाओं के अनुभव समान होते हैं। जाति, वर्ग और लैंगिकता के अलग–अलग सामाजिक स्थान महिलाओं के जीवन और संघर्ष को अलग–अलग रूप देते हैं। शर्मिला रेगे ने दलित महिलाओं की आत्मकथात्मक अभिव्यक्तियों और जीवन–अनुभवों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि दलित महिलाओं की आवाज को मुख्यधारा के स्त्रीवादी विमर्श में केवल 'पीड़ित महिला' के रूप में नहीं, बल्कि अपने अनुभवों की व्याख्या करने वाली सक्रिय सामाजिक और राजनीतिक विषय के रूप में देखना चाहिए। उनके "Writing Caste/Writing Gender" में जाति, श्रम, शिक्षा, हिंसा, प्रतिरोध और सामूहिक संघर्ष को दलित महिलाओं के अनुभवों के साथ जोड़कर देखा गया है।

इस प्रकार दलित नारीवादी दृष्टिकोण यह प्रश्न सामने रखता है कि क्या सभी महिलाओं के लिए पितृसत्ता, श्रम और घरेलू दायित्वों का अनुभव एक जैसा है? अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में इसका उत्तर नकारात्मक

है। उनकी दोहरी भूमिका को समझने के लिए घरेलू और आर्थिक श्रम के साथ जातिगत सामाजिक स्थिति को भी विश्लेषण में शामिल करना होगा। इसीलिए नारीवादी दृष्टिकोण, जाति–आधारित श्रम के विश्लेषण, अंतर्संबंधिता और दलित नारीवाद को एक साथ रखना इस शोध–पत्र के लिए अधिक उपयुक्त सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करता है।

4. अनुसूचित जाति की महिलाओं की दोहरी भूमिकाः एक सैद्धांतिक विश्लेषण

अनुसूचित जाति की महिलाओं की दोहरी भूमिका को समझने के लिए उनके जीवन में मौजूद आर्थिक और घरेलू भूमिकाओं को अलग–अलग देखने के बजाय उनके पारस्परिक संबंधों को समझना आवश्यक है। आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी महिलाओं को आय अर्जित करने और परिवार की अर्थव्यवस्था में योगदान देने का अवसर देती है, लेकिन इससे घरेलू जिम्मेदारियाँ स्वतः समाप्त नहीं होतीं। अनुसूचित जाति की महिलाओं के मामले में यह स्थिति जातिगत सामाजिक संरचनाए श्रम के विभाजन और लैंगिक अपेक्षाओं से भी जुड़ जाती है। इसलिए उनकी दोहरी भूमिका को केवल 'घर और रोजगार' के बीच संतुलन की समस्या के रूप में देखना उनके अनुभव की जटिलता को कम कर देता है।

4.1 आर्थिक भूमिका

अनुसूचित जाति की महिलाओं की आर्थिक भूमिका को केवल औपचारिक नौकरी के संदर्भ में देखना उचित नहीं है। भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा कृषि श्रम, दिहाड़ी मजदूरी, घरेलू कार्य, स्वरोजगार, पारिवारिक व्यवसाय और अन्य अनौपचारिक गतिविधियों से जुड़ा रहा है। अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में इन कार्यों का महत्व और बढ़ जाता है, क्योंकि ऐतिहासिक रूप से जाति और व्यवसाय के बीच बने संबंधों ने उनके लिए उपलब्ध आर्थिक अवसरों और कार्यों की प्रकृति को प्रभावित किया है। इस संदर्भ में काम केवल आय अर्जित करने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिति और आर्थिक संबंधों का भी हिस्सा है।

हालाँकि, आर्थिक गतिविधि में भागीदारी और आर्थिक स्वायत्तता को समान मान लेना उचित नहीं है। किसी महिला का आय अर्जित करना यह सुनिश्चित नहीं करता कि परिवार की आय पर उसका समान नियंत्रण भी हो। आर्थिक निर्णयों में उसकी भागीदारी, अपनी आय के उपयोग पर उसका अधिकार, संपत्ति तक उसकी पहुँच तथा परिवार में निर्णय लेने की क्षमता अलग–अलग स्तरों पर निर्धारित हो सकती है। इस प्रकार रोजगार महिला की आर्थिक स्थिति को बदलने की संभावना तो पैदा करता है, लेकिन आर्थिक स्वायत्तता अपने आप प्राप्त नहीं होती। यहाँ रोजगार और आर्थिक सशक्तीकरण के बीच अंतर को समझना आवश्यक है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए आर्थिक भूमिका का एक और महत्वपूर्ण पक्ष उनके कार्य की प्रकृति है। निम्न–वेतन, असंगठित और असुरक्षित रोजगार में संलग्न महिलाओं के लिए रोजगार स्वयं सुरक्षा और सम्मान की गारंटी नहीं बनता। जाति और लैंगिकता के आधार पर श्रम का सामाजिक मूल्यांकन उनके आर्थिक अनुभवों को प्रभावित कर सकता है। पार्वती रघुराम (2001) का अध्ययन यह दिखाता है कि भारत में भुगतान किए जाने वाले घरेलू कार्य का संगठन जाति और लैंगिकता से प्रभावित होता है। इस प्रकार आर्थिक रूप से सक्रिय महिला का श्रम बाजार में प्रवेश सामाजिक समानता में स्वतः परिवर्तित नहीं हो जाता।

4.2 घरेलू एवं पुनरुत्पादक भूमिका

आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने के बावजूद महिलाओं की घरेलू भूमिका सामान्यतः समाप्त नहीं होती। भोजन तैयार करना, घर की सफाई, बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा, परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना तथा घरेलू जीवन का संगठन ऐसे कार्य हैं जिनमें पर्याप्त समय और श्रम लगता है। इनमें से अधिकांश कार्यों के लिए कोई प्रत्यक्ष आर्थिक पारिश्रमिक नहीं मिलता। यही असशुल्क घरेलू श्रम महिलाओं की दोहरी भूमिका को समझने का महत्वपूर्ण आधार है। नारीवादी अर्थशास्त्र ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि बाजार के बाहर किया जाने वाला घरेलू और देखभाल संबंधी श्रम अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक होने के बावजूद अक्सर अदृश्य बना रहता है। परिवार के सदस्यों की देखभाल, भोजन और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति जैसी गतिविधियाँ श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस अर्थ में पुनरुत्पादक श्रम आर्थिक व्यवस्था से बाहर नहीं, बल्कि उसके संचालन की बुनियादी शर्तों में शामिल है।

कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में समस्या तब उत्पन्न होती है जब सशुल्क आर्थिक श्रम में प्रवेश के बावजूद घरेलू श्रम का पुनर्वितरण नहीं होता। महिला कार्यस्थल पर अपना काम पूरा करने के बाद घर में फिर से घरेलू और देखभाल संबंधी कार्यों में लग जाती है। इस स्थिति को दोहरा श्रम–भार कहा जाता है। अनुसूचित जाति की महिलाओं के मामले में इस दोहरे श्रम–भार को उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए दोहरी भूमिका केवल समय के दो हिस्सों में किए जाने वाले दो प्रकार के कामों का नाम नहीं है, यह श्रम के असमान सामाजिक वितरण को भी व्यक्त करती है।

4.3 जाति और दोहरी भूमिका

अनुसूचित जाति की महिलाओं की दोहरी भूमिका की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि उनके आर्थिक और घरेलू श्रम पर जातिगत संरचनाओं का भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए उनकी स्थिति को केवल 'घर और रोजगार' के समीकरण में सीमित करना पर्याप्त नहीं है। कार्यस्थल पर जातिगत भेदभाव, व्यवसायों का सामाजिक विभाजन, कम वेतन, असुरक्षित रोजगार और श्रम की कम सामाजिक प्रतिष्ठा जैसी स्थितियाँ उनके आर्थिक अनुभव को प्रभावित कर सकती हैं। जाति का प्रभाव केवल रोजगार के अवसरों तक सीमित नहीं रहता। भारतीय समाज में श्रम की सामाजिक प्रतिष्ठा भी जातिगत पदानुक्रम से जुड़ी रही है। कुछ प्रकार के श्रम को ऐतिहासिक रूप से निम्न और अपवित्र माना गया तथा इन कार्यों से जुड़े समुदायों को भी सामाजिक रूप से निम्न स्थिति प्रदान की गई। जब इस संरचना का लैंगिक आयाम जुड़ता है, तो अनुसूचित जाति की महिलाओं के श्रम का अनुभव और अधिक जटिल हो जाता है। उमा चक्रवर्ती (2003) ने जाति और पितृसत्ता के अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति को बनाए रखने वाली संरचनाओं में महिलाओं के विवाह, यौनिकता और सामाजिक आचरण पर नियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए अनुसूचित जाति की महिलाओं की दोहरी भूमिका को केवल लैंगिक असमानता के परिणाम के रूप में देखना अधूरा विश्लेषण होगा। यहाँ जाति और लैंगिकता एक–दूसरे को प्रभावित करते हुए श्रम के अनुभव को आकार देती हैं। यही वह बिंदु है जहाँ सामान्य कामकाजी महिला और अनुसूचित जाति की कामकाजी महिला के अनुभवों के बीच अंतर स्पष्ट होता है।

4.4 दोहरी भूमिकाः बोझ और Agency दोनों

दोहरी भूमिका की चर्चा करते समय अनुसूचित जाति की महिलाओं को केवल वंचित या पीड़ित समूह के रूप में प्रस्तुत करना भी उचित नहीं है। रोजगार और आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी उनके लिए agency का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकती है। स्वयं की आय होने से परिवार के भीतर उनकी निर्णय लेने की क्षमता बढ़ सकती हैए आर्थिक निर्भरता कम हो सकती है और सामाजिक संबंधों में उनकी स्थिति मजबूत हो सकती है। रोजगार उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर सार्वजनिक जीवन में भाग लेने और अपने लिए नए सामाजिक अनुभव अर्जित करने के अवसर भी प्रदान कर सकता है। इस अर्थ में कामकाजी भूमिका दोहरे स्वरूप वाली है। एक ओर घरेलू और आर्थिक जिम्मेदारियों का एक साथ निर्वहन constraint और अतिरिक्त श्रम–भार पैदा करता है, दूसरी ओर आर्थिक गतिविधि महिलाओं के लिए agency, आत्मनिर्भरता और सामाजिक गतिशीलता के अवसर भी खोलती है। दोनों पक्षों को अलग–अलग करके देखना उचित नहीं होगा।

अनुसूचित जाति की महिलाओं की दोहरी भूमिका इसलिए केवल दोहरा बोझ नहीं, बल्कि बोझ और संभावित सशक्तीकरण के बीच स्थित एक जटिल सामाजिक अनुभव है। रोजगार उनकी स्थिति में परिवर्तन की संभावना पैदा करता है, लेकिन उस परिवर्तन की सीमा परिवार, जाति, वर्ग और लैंगिक संबंधों की संरचनाओं से निर्धारित होती है। इसी कारण उनकी दोहरी भूमिका को समझने के लिए केवल यह देखना पर्याप्त नहीं है कि वे कितना काम करती हैं, यह भी देखना आवश्यक है कि उनके श्रम को कितनी सामाजिक मान्यता मिलती है, उसकी आय पर उनका कितना नियंत्रण है और परिवार तथा समाज में वह श्रम किस प्रकार शक्ति.संबंधों से जुड़ा हुआ है।

5. 'दोहरी भूमिका' की अवधारणा का पुनर्पाठ

कामकाजी महिलाओं की दोहरी भूमिका की अवधारणा महिलाओं के जीवन में मौजूद आर्थिक और घरेलू दायित्वों के बीच संबंध को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम रही है। यह अवधारणा इस तथ्य को सामने लाती है कि रोजगार में प्रवेश करने के बाद भी महिलाओं से घरेलू श्रम और देखभाल संबंधी कार्यों की अपेक्षा बनी रहती है। इस दृष्टि से यह पारंपरिक लैंगिक श्रम–विभाजन और महिलाओं पर पड़ने वाले अतिरिक्त श्रम–भार को समझने में उपयोगी है। किंतु अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में इस अवधारणा का पुनर्पाठ आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उनके श्रम–अनुभव केवल घरेलू और आर्थिक भूमिकाओं के बीच विभाजित नहीं होते, बल्कि जाति, वर्ग और लैंगिकता जैसी सामाजिक संरचनाओं से भी प्रभावित होते हैं।

5.1 दोहरी भूमिका की उपयोगिता

'दोहरी भूमिका' की अवधारणा का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि यह महिलाओं के श्रम को केवल रोजगार तक सीमित करके देखने की प्रवृत्ति को चुनौती देती है। यह स्पष्ट करती है कि आय अर्जित करने वाली महिला भी घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल और परिवार के प्रबंधन से मुक्त नहीं होती। इस प्रकार यह अवधारणा सशुल्क और असशुल्क श्रम के बीच मौजूद संबंध को सामने लाती है। इस अवधारणा के माध्यम से यह भी समझा जा सकता है कि महिलाओं के रोजगार में प्रवेश के बावजूद लैंगिक श्रम.विभाजन क्यों बना रहता है। कार्यस्थल और घर– दोनों क्षेत्रों में जिम्मेदारियों का निर्वहन महिला के समय, ऊर्जा और अवसरों पर अतिरिक्त दबाव डाल सकता है। इसलिए 'दोहरी भूमिका' महिलाओं के Double Burden को समझने के लिए एक प्रभावी प्रारंभिक वैचारिक उपकरण है। इसके अतिरिक्त, यह अवधारणा महिला के जीवन में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच मौजूद कृत्रिम विभाजन पर भी प्रश्न उठाती है। रोजगार और परिवार को दो अलग–अलग क्षेत्र मानने के बजाय यह दिखाती है कि दोनों महिलाओं के दैनिक जीवन में एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।

5.2 दोहरी भूमिका की सीमाएँ

हालाँकि, अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में 'दोहरी भूमिका' की अवधारणा अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इसका कारण यह है कि इसमें महिला के अनुभव को मुख्यतः दो भूमिकाओं– आर्थिक श्रम और घरेलू श्रम के बीच बाँटकर देखा जाता है। ऐसा करने पर उन सामाजिक संरचनाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है जो यह निर्धारित करती हैं कि महिला किस प्रकार का काम करेगी, उस काम को कितना पारिश्रमिक मिलेगा और उसके श्रम को समाज में किस स्तर की प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनुभव में जाति, लैंगिकता, वर्ग और श्रम अलग–अलग कारक नहीं हैं। ये एक–दूसरे के साथ अंतर्संबंधित होकर उनकी कार्यस्थिति और पारिवारिक भूमिका को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी महिला के कामकाजी होने मात्र से उसकी स्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, यह भी देखना होगा कि वह किस प्रकार के रोजगार में है, उसके श्रम की सामाजिक प्रतिष्ठा क्या है, उसकी आय पर उसका कितना नियंत्रण है और घर तथा कार्यस्थल दोनों में उसके साथ किस प्रकार के शक्ति–संबंध काम करते हैं। इसलिए दोहरी भूमिका की अवधारणा उपयोगी होते हुए भी अनुसूचित जाति की महिलाओं के श्रम–अनुभव की बहुस्तरीयता को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाती। यदि इसे केवल घर और रोजगार के बीच संतुलन के रूप में देखा जाए, तो जातिगत श्रम–विभाजन, व्यावसायिक असमानता और सामाजिक बहिष्करण जैसे आयाम विश्लेषण से बाहर रह सकते हैं।

5.3 दोहरी भूमिका से अंतर्संबंधित श्रम–भार की ओर

उपरोक्त सीमाओं को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए दोहरी भूमिका की अवधारणा को एक व्यापक दृष्टिकोण में पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। इस शोध–पत्र में इसके लिए अंतर्संबंधित श्रम–भार की अवधारणा को एक प्रस्तावित विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है। अंतर्संबंधित श्रम–भार का आशय केवल इस बात से नहीं है कि महिला घर और रोजगार दोनों में काम करती है, बल्कि यह कि उसके श्रम का अनुभव विभिन्न सामाजिक संरचनाओं के संयुक्त प्रभाव से निर्मित होता है। लैंगिकता घरेलू श्रम और देखभाल की जिम्मेदारियों को प्रभावित करती है, जाति रोजगार के अवसरों, व्यवसाय और श्रम की

सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित कर सकती है, वर्ग आय, संसाधनों और रोजगार की परिस्थितियों को निर्धारित करता है, जबकि इन सभी का संयुक्त प्रभाव महिला की वास्तविक कार्यस्थिति को आकार देता है।

इस प्रकार दोहरी भूमिका को एक स्थिर द्विभाजन के रूप में देखने के बजाय उसे अंतर्संबंधित सामाजिक और श्रम–संबंधों की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। यह दृष्टिकोण अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं को केवल 'दोहरे बोझ से दबे समूह' के रूप में नहीं देखता, बल्कि उनके श्रम में मौजूद agency, आर्थिक योगदान और सामाजिक गतिशीलता की संभावनाओं को भी पहचानता है। इस अर्थ में अंतर्संबंधित श्रम–भार की अवधारणा दोहरी भूमिका के पारंपरिक विमर्श को विस्तृत करते हुए अनुसूचित जाति की महिलाओं के श्रम–अनुभव को अधिक समग्र रूप में समझने का प्रयास करती है।

6. निष्कर्ष

कामकाजी महिलाओं की अवधारणा को केवल वेतन या रोजगार प्राप्त करने वाली महिलाओं तक सीमित करना उनके वास्तविक श्रम–अनुभव को संकुचित कर देता है। महिलाओं का घरेलू, देखभाल और पारिवारिक श्रम भी सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, भले ही उसका प्रत्यक्ष आर्थिक मूल्यांकन न किया जाता हो। रोजगार में प्रवेश महिलाओं के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक भागीदारी के नए अवसर अवश्य खोलता है, लेकिन इससे घरेलू जिम्मेदारियाँ स्वतः समाप्त नहीं होतीं। सशुल्क और असशुल्क श्रम के इस साथ–साथ बने रहने से महिलाओं की दोहरी भूमिका और दोहरे श्रम–भार की स्थिति निर्मित होती है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में इस दोहरी भूमिका को केवल लैंगिक असमानता के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है। उनकी कार्यस्थिति और श्रम–अनुभव जाति, लैंगिकता और वर्ग जैसी सामाजिक संरचनाओं के परस्पर संबंधों से प्रभावित होते हैं। जातिगत श्रम–विभाजन, रोजगार की प्रकृति, श्रम की सामाजिक प्रतिष्ठा और संसाधनों तक पहुँच जैसे प्रश्न उनकी आर्थिक भूमिका को प्रभावित करते हैं, जबकि पितृसत्तात्मक अपेक्षाएँ घरेलू और पुनरुत्पादक श्रम का भार बनाए रखती हैं। इस संदर्भ में अंतर्संबंधिता और दलित नारीवादी दृष्टिकोण अनुसूचित जाति की महिलाओं के अनुभव को समझने के लिए अधिक व्यापक सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं।

अतः दोहरी भूमिका की अवधारणा उपयोगी होते हुए भी अनुसूचित जाति की कामकाजी महिलाओं के अनुभव की पूरी जटिलता को व्यक्त नहीं करती। उनके संदर्भ में दोहरी भूमिका से अंतर्संबंधित श्रम–भार की ओर बढ़ना आवश्यक है, ताकि उनके श्रम में मौजूद बोझ के साथ–साथ आर्थिक agency, आत्मनिर्भरता और सामाजिक गतिशीलता की संभावनाओं को भी समझा जा सके।

संदर्भ

1. कबीर, नईला (2026)। ए फाउंडेशनल असिमेट्रीः जेंडर, अनपेड केयर वर्क, एंड द मार्केट इकॉनमी। ऑक्सफोर्ड रिव्यू ऑफ इकोनॉमिक पॉलिसी, 41, 3–4, 702–717।
2. क्रेंशॉ, किम्बर्ले (1989)। डिमार्जिनलाइजिंग द इंटरसेक्शन ऑफ रेस एंड सेक्सः ए ब्लैक फेमिनिस्ट क्रिटीक ऑफ एंटीडिस्क्रिमिनेशन डॉक्ट्रिन, फेमिनिस्ट थ्योरी एंड एंटीरेसिस्ट पॉलिटिक्स। यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो लीगल फोरम, 1989 (1), 139–167।
3. चक्रवर्ती, उमा (2003)। जेंडरिंग कास्ट थ्रू ए फेमिनिस्ट लेंस। कलकत्ताः स्त्री।
4. भुटा, ऐश्वर्या एवं मुरलीधरन, मृदुला (2020)। नॉट ऑल टाइम इज मनीः विमेन्स बर्डन ऑफ अनपेड वर्क। एनाल्स ऑफ द इंडियन एकेडमी ऑफ सोशल साइंसेज।
5. रघुराम, पार्वती (2001)। कास्ट एंड जेंडर इन द ऑर्गनाइजेशन ऑफ पेड डोमेस्टिक वर्क इन इंडिया। *वर्क, एम्प्लॉयमेंट एंड सोसाइटी*। खंड 15, अंक 3, पृ. 607–617।
6. रवींद्रन, जी. (2010)। कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ विमेन टू द नेशनल इकॉनमी। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन। नई दिल्ली।
7. रेगे, शर्मिला (2013)। राइटिंग कास्ट, राइटिंग जेंडरः नैरेटिंग दलित विमेन्स टेस्टिमोनियोस। नई दिल्लीरूः जुबान।

8ण सबरवाल, निधि सदाना एवं सोनलकर, वंदना (2015)। दलित विमेन इन इंडियाः एट द क्रॉसरोड्स ऑफ जेंडर, क्लास, एंड कास्ट। *ग्लोबल जस्टिसः थ्योरी, प्रैक्टिस, रेटोरिक* / खंड 8, अंक 1।